Atishi Marlena
5B Hindu College Flats
University of Delhi
Delhi 110007
Ph. No. (011) 27667209

मैं 5-11, जुलाई, 2005 को अमरकंटक में थी। इस दौरान मैंने नागराज शर्मा जी से चर्चा की। उन चर्चाओं के आधार पर जो स्पष्टीकरण हुआ वह निम्नलिखित है।

Section 1: अनुभवात्मक अध्यात्मवाद

'परमाणु में गठनपूर्णता एक अद्भुत संक्रमाणिक घटना'

p8.

इसे अद्भुत इसलिए कहा है कि भूतकाल इससे ज्यादा कुछ हुआ नहीं है और भविष्य में इससे ज़्यादा कुछ होना नहीं है।

'मानने का आधार प्रयोजन बताया गया है'

p12

मानने की प्रक्रिया में प्रयोजन की 'समझ' होती ही है। जागृत अवस्था में प्रयोजन की समझ सही, व उससे पहले गलत होती है। भ्रमित अवस्था में भी मनुष्य ने भौतिक आवश्यकताओं के संग्रह को अपना प्रयोजन माना हुआ है, और यही उसके पहचानने व निर्वाह करने का आधार है।

'जानने-मानने के लिए उत्सव और उत्साह, जानने-मानने-पहचानने के लिए उत्सव और उत्साह

p12

जाग्रत मानव में उत्सव रहता ही है, क्योंकि वह प्रयोजन पहचानता है। भ्रमित मानव दुखी रहता है क्योंकि वह प्रयोजन को प्रमाणित नहीं कर पाता। जाग्रत मनुष्य में भी उत्सव के 3 stages देख सकते हैं:

- ~~ई~~ समझ पूर्ण होना
- स्वयं में प्रमाण देखना
- दूसरों को बोध कराना व उत्सावित कराना

p.13 अभीप्सा, आशा, आकांक्षा, इच्छा

आशा : जीने की आशा
इच्छा : सर्वाधिक यांत्रिक /mechanical
अभीप्सा : अभ्युदय के अर्थ में
आकांक्षा : अनुभव की रोशनी में खुशहाली मनाना।

सर्वप्रथम आशा, फिर इच्छा, उसके बाद अभीप्सा और फिर आकांक्षा।

p.14 "संबंधों में, मूल्यों में, मूल्यांकन में ओतप्रोत रहने का अवसर सर्वसमीचीन है"

इस '~~ओतप्र~~' 'ओतप्रोत' रहने का आधार अनुभव ही। अनुभव होने के बाद जीवन की सभी क्रियाएँ अनुभव के आधार पर होती हैं। इसी को अनुभवमूलक विधि कहा है। अनुभवमूलक विधि से जीने में प्रयोजन की समझ निहित है। इस समझ के आधार पर ~~*~~ हम संबंधों को पहचानते हैं व निरंतर मूल्यों का आस्वादन करते हैं। इसी का अर्थ है मूल्यों में ओतप्रोत रहना।

p.15 "भ्रम का कार्यरूप अतिव्याप्ति, अनाव्याप्ति, अव्याप्ति दोष है

अतिव्याप्ति : अधिमूल्यन

अनाव्याप्ति : अवमूल्यन
अव्याप्ति : मूल्यांकन नहीं करना
इससे मुक्त होने के लिए सही मूल्यांकन की आवश्यकता है।

p47 अनुभव प्रमाण - सहअस्तित्व में अनुभव
- चारों अवस्थाओं में संतुलन का प्रमाण
प्रयोग प्रमाण - समृद्धि को प्रमाणित करने के लिए प्रयोग
- समाज गति के लिए प्रयोग

p49 "अपना ही कल्पनाशीलता, कर्म स्वतंत्रता शरीर से भिन्न तरंग के रूप में अनुभव करना बनता है।"

इस तरंग का स्वरूप कंपनात्मक गति है। आशाएँ व विचार कंपनात्मक गति के रूप में मेधस पर प्रसारित होती हैं। यह सूक्ष्म तरंग के रूप में, मेधस जिस chemical water में स्थित है उसे प्रभावित करती हैं।

p49 "चिन्तन में ही न्याय, धर्म, सत्य का आभास होना और प्रतीत होना, साक्षात्कार पूर्वक प्रमाणित होता है।"

भ्रमित स्थिति में भी मनुष्य सत्य भासा रहता है। अध्ययन विधि से उसका आभास होता है। बोध की स्थिति में, अर्थ में पहुँचने से सत्य प्रतीत होता है। उसे प्रमाणित करने के sequence में अनुभव होता है।

p51 "सभी जीव संसार, जीवनेच्छा से ही वंशानुषंगीय कार्य में तत्पर रहना पाया जाता है।"

जीवनेच्छा का अर्थ है 'जीने की आशा'। जीवन ने शरीर को ही जीवन मान लिया है और अलग-अलग शरीरों

के अनुसार चालित है। जीने की आशा (जीवनेच्छा) अलग अलग शरीरों में, अलग-अलग रूप में प्रमाणित होती है। यही वंशानुषंगीयता है।

परन्तु मनुष्य में वंशानुषंगीयता कम पड़ जाती है। मनुष्य का कार्य-व्यवहार उसकी समझ से चालित है क्योंकि मनुष्य ज्ञानानुषंगीय इकाई है। मनुष्य शरीर रचना में यह बात है कि कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता व्यक्त हो सकते हैं। इसका कारण है समृद्धिपूर्ण मेधस तंत्र। परन्तु भ्रमित अवस्था में (जीवन ने) शरीर को जीवन मान लिया है।

---

p54 "चैतन्य इकाइयाँ --- 'आशानुरूप कार्यगतिपथ' सहित मनोवेग के अनुपात में गतिशील रहना पाया जाता है।"

जीवन, जीने की आशा के अनुरूप, एक कार्यगतिपथ बना लेता है और उस कार्यगतिपथ के अनुसार शरीर उपलब्ध होते हैं। सर्वप्रथम मन ही व्यक्त होता है, और जीवों में यह जीने की आशा के रूप में प्रमाणित होता है। जीवन जो कार्यगतिपथ का आकार बनाता है, वह मन की गति से बनाता है।

"जीवन ही जीवन को देख पाएगा और इसका प्रमाण क्या होगा"

p56

- शरीर का दृष्टा मन - मन ही इन्द्रीय के संकेतों को देखता है
- मन का दृष्टा वृत्ति - तुलन और विश्लेषण द्वारा वृत्ति मन का मूल्यांकन करती है
- वृत्ति का दृष्टा चित्त - चिन्तन में प्रयोजन की समझ द्वारा चित्त वृत्ति का मूल्यांकन करता है
- चित्त का दृष्टा बुद्धि - प्रमाणित करने की प्रवृत्ति बुद्धि में है तो वह चित्त में हुए साक्षात्कार को मूल्यांकित कर सकता है"
- बुद्धि का दृष्टा आत्मा - अनुभव की रोशनी में आत्मा ही बुद्धि को देखता है

आत्मा का दृष्टा कोई नहीं - आत्मा ही दृष्टा है।

p56 "मन वृत्ति मे, वृत्ति चित्त में, चित्त बुद्धि में, बुद्धि आत्मा में और आत्मा अस्तित्व में अनुभूत होना देखा गया है।"

यह अनुभवमूलक विधि की चर्चा है। मन वृत्ति का अनुभव करता है अर्थात वृत्ति के संकेतों को ग्रहण करता है। मन अनुभव प्रमाणों को ग्रहण करेगा और उनके अनुसार मूल्यों का आस्वादन करता है। इसी प्रकार हर परिवेश को अपने से अगले परिवेश संकेत मिलते हैं - अर्थात वह अगले परिवेश में अनुभूत होते हैं। आत्मा का अनुभव सहअस्तित्व में होता है, और इस अनुभव से संपूर्ण जीवन अनुप्राणित हो जाता है।

p63 "अध्ययन ~~[illegible]~~ सहज रूप में जीवन और अस्तित्व बोध की अभिव्यक्ति और प्रमाणित होने के क्रम में --- आत्मा जीवन में केन्द्रीय होना"

इसका मतलब है कि जागृति के बाद अनुभव के आधार पर निर्णय लेना बनता है। उससे पहले शरीर के आधार पर ही होता है। जागृति ~~[illegible]~~ के बाद आत्मा के केन्द्रीय बिन्दु से संपूर्ण जीवन नियंत्रित होता है।

p66 "अणु का नियंत्रण तत्व अणु में ही निहित है"

प्रत्येक अणु में भारबंधन व अणुबंधन से उसका नियंत्रण होता है। इसके मूल में भी परमाणु का मध्यांश ही है। वह परमाणु में संतुलन को बनाता है, फिर परस्परता में भी संतुलन को बनाए रखता है।

p72 "जागृत स्थिति में मध्यस्त क्रिया --- भास, आभास, प्रतीति होने में कार्यरत है"

जागृत स्थिति में स्वयं तो अनुभव होता है, और दूसरों को भास, आभास, प्रतीति कराने के लिए सक्षम हो जाते हैं। जागृति के पश्चात, व्यक्ति दूसरों को बोध करा सकता है।

---

p77 "भारबंधन मुक्त होने का फलन, अणुबंधन से मुक्त होने का सूत्र"

भारबंधन का अर्थ है परस्परता में आकर्षण और यह चुम्बकीय बल संपन्नता के कारण है। भारबंधन के कारण ही अणु बनते हैं। इसलिए जब परमाणु गठनपूर्ण होने पर भारबंधन से मुक्त हो जाता है, वह अणुबंधन से भी मुक्त हो जाता है।

p93 "रचना सूत्र में होने वाली तृप्ति का उत्कर्ष"

प्राणसूत्रों में रचना विधि निहित रहती है। एक रचना, जब समृद्ध हो जाती है, तो उस तृप्ति के आधार पर प्राणसूत्रों में उत्सव होता है जिससे एक नई रचना बनती है।

---

p107 "अनुभव जीवन में, से, के लिए समीचीन है"

में : क्योंकि जीवन में अनुभव होता है

से : क्योंकि जीवन ही अनुभवगामी विधि से अनुभव की ओर बढ़ता है

के लिए : क्योंकि अनुभव जीवन की तृप्ति के लिए आवश्यक है।

p149 "अभिभूत होने का तात्पर्य सत्ता पारगामी होना समझ में आता है।"

वस्तुओं का सत्ता में ~~डूबा~~ डूबा व घिरा होना मनुष्य को आँखों से दिखता है। वस्तुओं का सत्ता में भीगा रहना आँखों से नहीं दिखता, उसका अनुभव होता है। यह

समझ में आता है कि क्रियाशीलता का कारण है ऊर्जा संपन्नता और हर इकाई ऊर्जा संपन्न है क्योंकि वह सत्ता में भीगी हुई है। इस प्रकार सत्ता का पारगामी होना समझ में आता है।

p 157-158 " जीवनेच्छा का प्रमाण ही मानवेच्छा और मानवेच्छा का प्रमाण ही जीवनेच्छा "

जीवनेच्छा : सुख, शाँति, संतोष, आनंद
मानवेच्छा : समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व

जीवन में स्थिति रूप में जीवनेच्छा व गति / प्रमाण रूप में मानवेच्छा है। यह दोनों एकदूसरे के बिना हो नहीं सकते। मनुष्य जब तक समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व का अनुभव नहीं करता तबतक उसमें सुख, शाँति, संतोष, आनंद की स्थिति नहीं बनती।

ऐसी परिस्थिति हो सकती है कि मनुष्य अभयता व व सहअस्तित्व का अनुभव कर ले परन्तु अखण्ड समाज व सार्वभौम व्यवस्था प्रमाणित न हुआ हो। ऐसा मनुष्य समाधान, समृद्धिपूर्वक जीएगा और अखण्ड समाज व सार्वभौम व्यवस्था के लिए कार्यरत रहेगा।

Section 2 : समाधानात्मक भौतिकवाद

p37 "सत्ता को ऊर्जा, चेतना, ~~व्यापक~~, ज्ञान, व्यापक नाम दिया है"

पहचानने की स्थिति में ज्ञान, व गति में चेतना कहा है। सत्ता ~~ऊर्जा~~ (ऊर्जा संपन्नता) मनुष्य में ज्ञान, जीव में आशा, वनस्पति में पुष्टि व पदार्थ में अस्तित्व के रूप में है।

p39 "अस्तित्व संपूर्ण भाव होने के कारण प्रत्येक इकाई में भाव संपन्नता देखने को मिलती है। मूलत: अस्तित्व ही परमभाव होने के कारण अस्तित्व ही परम धर्म है।"

संपूर्ण भाव अस्तित्व मे ही है। अस्तित्व में अनुभव होना है परम भाव है। भाव अर्थात् मूल्य अर्थात् उस इकाई की मौलिकता। हर वस्तु में अपनी मौलिकता है। जैसे लोहे के रूप में और कोई वस्तु नहीं है; दूसरी कोई तुलसी नहीं है। इसलिए मनुष्य जैसी कोई दूसरी चीज नहीं होती। मनुष्य को ही संपूर्ण भाव अर्थात् सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व में अनुभव करना है।

p43 "पदार्थ का तात्पर्य है कि पद भेद से अर्थ भेद को प्रकाशित कर सके।"

यहाँ पदार्थ का तात्पर्य पदार्थावस्था से नहीं बल्कि ~~सं~~ प्रकृति से है जो पदार्थ से रचित है। प्रकृति में चार पद हैं: प्राण पद, भ्रांत पद, देव पद, दिव्य पद। इन चारों पदों में पदार्थ ही प्रकाशित है।

p44 "जो जिससे बना है वह उससे अधिक नहीं हो सकता"

अधिक का तात्पर्य है भिन्न हो जाना। भिन्नता सिर्फ संक्रमण से होती है। गठनपूर्ण परमाणु, गठनशील परमाणु से भिन्न है

व अधिक है। परन्तु प्राणावस्था, पदार्थावस्था से अधिक नहीं है। दोनों ही गठनशील परमाणुओं से बने हैं, व पदार्थ-प्राण चक्र में हैं।

p52 'मूल चेष्टा'

मूल चेष्टा का अर्थ है क्रियाशीलता। इसका स्वरूप इकाई किस अवस्था की है (पदार्थ, प्राण, जीव या ज्ञान) उस पर निर्भर करता है।

p54 "अस्तित्व में, से, के लिए संपूर्ण अध्ययन है"

'में' - क्योंकि अध्ययन अस्तित्व में ही हो रहा है, अस्तित्व से अलग कोई स्थान नहीं है।
'से' - क्योंकि अध्ययन करने वाली इकाई जीवन है जो अस्तित्व का ही हिस्सा है।
'के लिए' - क्योंकि अध्ययन अस्तित्व के प्रयोजन के लिए हो रहा है।

p88 "वर्तमान ही वस्तुओं में वास्तविकता का प्रकाशन है"

सब वस्तुएँ वर्तमान में ही हैं। हर वस्तु में रूप, गुण, स्वभाव, धर्म अविभाज्य हैं।

Section 3 : कर्म दर्शन

p84 "ऐसी प्राणकोषाएँ जीवों के, मनुष्य के शरीर के हड्डी के पोले में भरे रसों में निर्मित होना पाया जाता है और यह शरीर की आवश्यकतानुसार वितरित होते हैं"

हड्डी के पोले में रक्त कोषाएँ बनती हैं और यह शरीर में बाकी सब कोषाओं तक पोषण पहुँचाते हैं। ~~कि है के~~ इस पोषण मिलने के ~~कारण~~ कारण शरीर की सभी कोषाएँ, अपने-अपने स्थान पर, और कोषाएँ निर्मित कर सकते हैं।

अगर ऐसी परिस्थिति हो कि शरीर का कोई हिस्सा सुन्न पड़ जाए और नई कोषाएँ न निर्मित कर सके, तब रक्त उस हिस्से को नई कोषाएँ उपलब्ध कराता है।

p84 ~~व~~ "वनस्पति संसार में, रस संचार तंत्रणा से पत्ती और जड़ के क्रियाकलाप से रस संचय होता है, फलस्वरूप प्राणकोषाएँ बनती रहती हैं।"

पेड़ पौधों में ज़्यादातर प्राणकोषाएँ stem के पोले में ही बनती और वहाँ से वितरित होती हैं. पत्तों, फूलों में प्राणकोषाएँ नहीं बनती क्योंकि उन स्थानों पर काफी temperature variation होता है।

p103 "प्राणों को परम, पावन, पूर्ण नामों से इंगित करते हैं"

परम - ज़्यादा/कम से मुक्त
पावन - सर्वत्र प्रयोजनशील
पूर्ण - हर स्थान पर एक समान

p147 "मनुष्य में जीवन प्रधान रहता है। इसलिए शरीर का सम, विषम, मध्यस्थ गुण गौण हो जाते हैं।"

शरीर के सम, विषम मध्यस्थ गुण अर्थात् शरीर का बढ़ना, उसका बना रहना और उसका विरचित होना। जीव संसार में यह गुण प्रधान रहते हैं और शरीर का जीवन पर प्रभाव रहता है। ज्ञानावस्था, अर्थात मनुष्य में शरीर तो रहता है, परन्तु उसकी प्रधानता नहीं रहती। अब जीवन के सम, विषम, मध्यस्थ गुण प्रधान हो जाते हैं।

p47 "जीवों में स्वभाव, धर्म संयुक्त रूप में होता है"

सिर्फ जीवावस्था मे नहीं, चारों अवस्थाओं मे स्वभाव और धर्म की पहचान संयुक्त रूप में होती है। उसी प्रकार रूप और गुण की पहचान भी संयुक्त रूप में होती है।

p157 "श्रम अपने में यथास्थिति का वैभव..."

हर परिणाम अपने मे एक यथास्थिति है जिसमे श्रम और गति निहित रहते हैं। श्रमपूर्वक ही यथास्थिति बनी रहती है।

p160 "व्यापक वस्तु का बोध होने के बाद, अनंत वस्तुएं कैसे हैं, का उत्तर मिल गया"

सत्ता पहचानने के बाद अनंत इकाइयाँ समझ में आती हैं। सत्ता पहचानने के उपरांत ही चारों अवस्थाएं, चारों पद व उनके अंतर्संबंध समझ में आते हैं। यह सब सत्ता का ही वैभव है और उसे समझे बिना अनंत इकाइयों की समझ पूरी नहीं हो सकती।

ज्ञान/समझ सत्ता की ही महिमा है अर्थात् सत्ता स्वरूप है। उसी प्रकार मूल्य भी सत्ता स्वरूप है। मनुष्य में ज्ञान ऊर्जा संपन्नता का स्वरूप है। मूल्यों का अनुभव ऊर्जा संपन्नता का अनुभव है, उसी की अभिव्यक्ति है। क्योंकि जीवन भी सत्ता में संपृक्त है, उसकी मौलिकता मूल्यों

के रूप मे है।

p165 "मानव में प्रमाण विधि से सार्थक पूंजी, प्रत्यावर्तन विधि से निरंतर प्रखर हो जाती है।"

परस्परता में परावर्तन दूसरों के प्रत्यावर्तन के लिए स्रोत है। उसी प्रकार हम खुद जो परावर्तन करते हैं वह स्वयं के प्रत्यावर्तन के लिए स्रोत बन जाता है अर्थात वह स्वयं के निरीक्षण, परीक्षण का आधार बन जाता है

p223 'दृष्टा, कर्त्ता, भोक्ता पद को मानव ही प्रमाणित करता है।

मध्यस्थ दर्शन में मानव को ही दृष्टा, कर्त्ता, भोक्ता पद में देखा गया है। अध्यात्मवाद ने ईश्वर को ही दृष्टा और कर्त्ता माना है, व मनुष्य को अपने ~~कार्य करा~~ कार्य के लिए ज़िम्मेदार नहीं माना है।

मध्यस्थ दर्शन के अनुसार
- मानव ही दृष्टा है :- ज्ञान, विवेक, विज्ञान का दृष्टा
  - चार अवस्थाओं, चार पदों का दृष्टा
- मानव ही कर्त्ता है : चारों अवस्थाओं के साथ कार्य कैसे होगा।
- मानव ही भोक्ता है :- आवश्यकता से अधिक उत्पादन व उसका शरीर पोषण, संरक्षण, समाज गति में उपयोग।
  - संबंध, मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्ति

मनुष्येत्तर प्रकृति में सिर्फ स्वयंस्फूर्त कार्य है, कर्त्ता पद में सिर्फ मनुष्य है।

Section 4: General questions

1. अभयता शब्द से क्या तात्पर्य है?

अभयता का मतलब है कि मनुष्य में पशु मानवीयता व राक्षस मानवीयता समाप्त हो जाना। जब मनुष्य मानव की तरह जी पाता है, तो उसका प्रमाण इस रूप में मिलता है कि द्रोह-विद्रोह, शोषण समाप्त हो जाता है। यही अखण्ड समाज विधि है।

2. 'जागृति में मूल्यों का आस्वादन और भ्रम में संवेदनाओं का आस्वादन होता है।'
परन्तु भ्रमित स्थिति में भी हम परिवार जनों व मित्रों के साथ मूल्यों का भास तो करते हैं - तो इसे कैसे समझें?

भ्रमित मानव में मूल्यों का आधार भी शरीरमूलक ही है। जिन मूल्यों का भास होता भी है, उनकी निरंतरता नहीं बनती। जो मूल्य मनुष्य को अभी तक कुछ-कुछ समझ में आए हैं वे हैं: ममता, विश्वास, प्रेम। परन्तु इनकी समझ भी सीमित है और निरंतरता नहीं बनी है।

3. अनुभव तक पहुँचने की प्रक्रिया किस प्रकार होती है? अनुभव का स्वरूप क्या है?

अस्तित्व अनुक्रम है, यह पता चलना ही अनुभव है। अनुभवगामी विधि में, अध्ययन से बोध होता है, उसके बाद अनुभव होता है और उसके बाद प्रमाण बोध। अनुभव प्रमाण में समाधानित होना स्वाभाविक हो जाता है। अनुभव ही जागृति है, और अनुभव से मनुष्य दृष्टा पद में आ जाता। अनुभव को प्रमाणित करना ही जागृतिपूर्णता (आचरण पूर्णता) है। अनुभव के बाद समाधान से शुरू करके, सहअस्तित्व व्यक्त करने योग्य हो जाते हैं। इसी क्रम में दूसरों को

सहअस्तित्व का बोध करा पाते है, व जी कर प्रमाणित कर पाते हैं।

4. जीवन स्वतंत्रता व मानव स्वतंत्रता में क्या अंतर है?

जीवन स्वतंत्रता का अर्थ है जागृतिपूर्णता अर्थात तीनों ऐषणाओं से मुक्ति व उपकार की प्रवृत्ति। मानव स्वतंत्रता समाधान, समृद्धि, अभय व सहअस्तित्व है। यह जीवन जागृति के पश्चात ही मानव परंपरा में प्रमाणित होगी।

5.